भारतीय समाज और परिवार की कहानियाँ

-अनवर सुहैल

'चहल्लुम' अनवर सुहैल का तीसरा कथा-संग्रह है। इसमें संग्रहित पहली तीन कहानियाँ किसी न किसी कथा-प्रतियोगिता में पुरस्कृत हैं। अनवर सुहैल हमारे समय के उन कथाकारों में से है जो भारतीय समाज के विभिन्न पक्षों को उघाड़ते और उनसे रचनात्मक स्तर पर जूझते है। भारतीय समाज को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक खाँचो में बाँट कर देखने की प्रवृत्ति है। यह बंटवारा धार्मिक आधार पर भी होता है। आजादी के बाद गाँव के बिखराव और शहरों में धार्मिक पहचान के आधार पर विकसित होने वाले मुहल्लों ने इस मानसिकता को मनोग्रन्थि के रूप में बदल दिया है।

हिन्दू-मुसलमान को गंगा-जमुना के रूपक से समझा जाता है। भारतीय सभ्यता को गंगा-जामुनी सभ्यता की संज्ञा दी जाती है। जबकि इससे जुड़ा स्पष्ट विरोधाभास है कि गंगा, जमुना के बारे में ढेर सारे भ्रम पाले हुए है तो जमुना, गंगा के बारे में। अलगू चौधरी और जुम्मन मियाँ 'पंच परमेश्वर' के बाद अलग-थलग पड़ते जा रहे है। बहुसंख्यक 'हिन्दू' समुदाय अपने साथ ही रहने वाले अल्पसंख्यकों के जीवन के बारे में ढेर सारी कहानियाँ गढ़े रहता है तो अल्पसंख्यकों की भी यही हालत रहती है। इस तरह की स्थिति अपनी नकारात्मकता के कारण कई तरह के भयानक परिणामों को जन्म देता है, एक उदाहरण काफी होगा 'भारत-पाक का विभाजन'।

इसके बाद भी रचनात्मक स्तर पर भ्रमों को तोड़ने और संवाद स्थापित करने का कार्य होता रहा है। अनवर सुहैल इसी मिज़ाज़ के कथाकार है, वह अपनी कहानियों में संवाद की जड़ता को तोड़ते है। संग्रह शीर्षक 'चहल्लुम' के नाम से ही पहली कहानी में अनवर ने मुस्लिम परिवार के ताने बाने को बुना है। यहाँ मुस्लिम परिवार ठीक उन्हीं भारतीय परिवारों की तरह दिखाई देता है, जहाँ मुखिया की मृत्यु के बाद धन का लालच सारे रिश्तों में दरार पैदा कर देता है। शौहर के इंतकाल के बाद मातम में डूबी, दो बेटों और एक बेटी की अम्मी अजीब असमंजस में पड़ जाती है। बड़ा बेटा और उसकी बीबी धार्मिक रीति रिवाजों को अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करने लगते हैं। चालीस दिन की शोक की परंपरा की आड़ में अपनी ही अम्मी से सब कुछ छीन लेना चाहते हैं। इस स्थिति में 'अम्मी' परंपरा और रुढ़ियों को दरकिनार करते हुए अपने बारे में व्यावहारिक और कठोर निर्णय लेती है। इस प्रक्रिया में उसकी 'बेटी' भी उसका पूरा सहयोग करती है। यह कहानी एक अर्थ में 'मुस्लिम परिवार' के अन्दरूनी साँचों को स्पष्ट करती है, जहाँ अन्य धर्म के परिवारों की भाँति स्वार्थ की उठापठक और रिश्तों की बदलती परिभाषा निर्मित होती रहती है।

दूसरी कहानी 'पुरानी रस्सी' है। इस कहानी में निकुंठ प्रेम की स्थिति के साथ 'वर्ग चरित्र' की ओर इशारा भी किया गया है। एक आदिवासी स्त्री का निश्छल प्रेम पाने के बाद भी कहानी का पुरुष पात्र कई रूपों में उसका फायदा ही उठाता है। इन दोनों में आर्थिक-समाजिक स्तर पर स्पष्ट और गहरा विभेद बना रहता है। स्त्री पात्र 'श्यामा' अपने प्रेम का प्रतिदान किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करती है। कहानी के अन्त में ऐसी स्थिति बनती है जबकि पुरुष पात्र उसके लिए कुछ कर सकता है। यहाँ भी उसका वर्ग चरित्र उसके ऊपर हावी हो जाता है।

'तिलचट्टा' नामक तीसरी कहानी में अनवर सुहैल एक बार फिर परिवार की कहानी रचते हैं। यह परिवार के टूटने, रिश्तों में आयी दूरी और किसी न किसी रूप में हर आदमी के अकेले पड़ते जाने की कहानी है। एक परिवार अपने मकान के रूप में अपने सपनों की नींव रखता है। जबकि समय बीतने के साथ रहने आ जाते है ढ़ेर सारी मकड़ियाँ और तिलचट्टे। अम्मा का दुख यही है कि तीन बेटों और एक बेटी होने के बाद भी ''लगता है कि अब इस घर में तिलचट्टे और मकड़ियाँ ही रहेंगी ....!'' बड़ा बेटा, जिसके माध्यम से यह कहानी सुनायी जाती है। वह चाहते हुए भी उनका साथ नहीं दे पाता है। वह दवाई का इस्तेमाल करके घर के तिलचट्टे खत्म कर देने की कोशिश तो करता है, लेकिन अच्छी तरह जानता है कि इससे उनके दिमाग में घर कर गये तिलचट्टे खत्म नहीं होगें।

'इस्लाम' एकेश्वरवादी धर्म है। दूसरे धर्मो के मानने वालों के बीच इस धर्म के लोगों की एकता और कट्टरता के बारे में गहरे भ्रम है। 'सुन्नी-वहाबी' कहानी में अनवर सुहैल इस भ्रम को एक झटके में तोड़ देते हैं। धर्म का ढिढ़ोंरा पीटने वाले लोगों की अलगाववादी मानसिकता और फ़िरकापरस्ती को इस कहानी का मुख्य कथ्य बनाया गया है। इसके लिए 'शादी तय' करने का मौका चुना गया है। फ़िरकापरस्ती की नकारात्मकता को स्वीकार करते हुए भी इसके खिलाफ संघर्ष करने का माद्दा एक 'खानसामें' में दिखाकर कथाकार एक नयी आशा की ओर संकेत करता है।

'बिलौटी' संग्रह की पाँचवी कहानी है। इसमें 'कथा पात्र' बिलौटी एक प्रश्नचिह्न और चुनौती की तरह तथाकथित

सभ्य समाज के सामने खड़ी दिखाई देती है। यह कहानी समाज में नैतिकता और सभ्यता की आड़ में छुपे हुये लोगों की वास्तविकता को बेपर्दा करती है। एक लावारिस और बेसहारा पागल स्त्री की संतान के रूप में पैदा होने वाली 'बिलौटी' अपने आप को 'पुरुष' में ढालकर अपने अस्तित्व को स्वीकृत कराती है।

'दहशतगर्द' नामक अन्तिम कहानी में हमारा ध्यान आजकल गली, मुहल्ले, चायखाने, अखबार पढ़ने की दिनचर्या में शामिल चर्चा के विषय 'आंतकवाद' की ओर खींचा गया है। 'धार्मिक आंतकवाद' के सच को स्वीकार करते हुए कथाकार में तब्दील हो जाने की कहानी कहता है। कथाकार इस 'व्यक्तित्व-अन्तरण' की प्रक्रिया में पाठकों को खींचकर ले जाता है। कथाकार जानता है कि वह जिन स्थितियों को सामने ला रहा है, उन सब के बारे में सारे अच्छी तरह जानते हैं। इस के बाद भी वह सबसे अन्त में यही कहता है कि, ''मेरा लंगोटिया यार-मूसा एक दहशतगर्द कैसे बना, मैं क्या कभी जान पाऊँगा?'' यह प्रश्न एक सामाजिक और राजनीतिक बिडम्बनाओं के रूप में हमारे सामने आ जाती है। इस कहानी में पाठकों का ध्यान साम्प्रदायिकता से जुड़े एक महत्वपूर्ण पहलू की ओर दिखाया गया है। वह है बाल मनोवृत्ति का है, ''बचपन में मैं मुसलमानों के बारे में यही जानता था कि ये अछूत होते है। इनका 'खतना' किया जाता है। औरंगजेब जैसे मुगल बादशाहों के अत्याचारों से घबराकर या फिर लालचवश बहुतेरे हिन्दू मुसलमान बन गए।'' बताया ही पढ़ाया भी जाता है, ''उपाध्याय सर छात्रों को बताते -''बच्चों सुना तुमने मस्जिद के मुल्ले की बाँग । इस देश के मुसलमान अभी तक मुगल बादशाह अकबर की बड़ाई करना नहीं छोड़े हैं। इन लोगों के मुंह से अपने छत्रपति शिवाजी या महाराजा प्रताप की बड़ाई तुमने कभी नहीं सुने होगें। ये लोग आज भी अकबर-बाबर की बड़ाई गाते है।''

किस्सागोई की मूल प्रवृत्ति, छोटे-छोटे वाक्यों और शब्दों के मौजूं इस्तेमाल के साथ यह कहानी - संग्रह पढ़ने का भरपूर मजा देती है। साथ ही कई तरह के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सच से पाठक को रूबरू भी कराती है।

-मनोज पाण्डेय